लकीर का फकीर

लेखकद्वय

राजीव पटेल

संजय कुमार सिंह

सत्यक
प्रकाशन

लकीर का फकीर

लकीर का फकीर

लेखकद्वय

राजीव पटेल

संजय कुमार सिंह

सुयश प्रकाशन

प्रथम संस्करण : 2021 (बुद्धाब्द 2565)

ISBN : 978-81-949470-3-5

प्रकाशक : **सम्यक प्रकाशन**
32/3, पश्चिमपुरी, नई दिल्ली—110063
दूरभाष : 9810249452, 9818390161
Email : hellosamyak1965@gmail.com
Web : www.samyakprakashan.in

© **सर्वाधिकार सुरक्षित**

मूल्य : 40 रुपये

रचना : **लकीर का फकीर**
रचनाकार : राजीव पटेल, संजय कुमार सिंह
शब्दांकन : संदीप आर्ट एण्ड ग्राफिक्स

मुद्रक : बालाजी प्रिंटर्स, दयाबस्ती, नई दिल्ली

लेखक की कलम से

भारत में जितने भी परंपरागत पर्व या त्यौहार मनाए जाते हैं, लगभग उन सभी का अस्तित्व क्षेत्रीय स्तर पर पाया जाता है। ऐसी कोई भी भारतीय ब्राह्मणी परंपरा नही है जिसका स्वरूप राष्ट्रीय स्तर का है अथवा समूचे भारत में एक सामान है। हर एक परंपरा अपनी एक कहानी समेटे हुए क्षेत्र विशेष का प्रतिनिधित्व करती है। सबसे बड़ी बात यह है कि इन क्षेत्रीयताओं से जुड़ी परंपरा का कोई पुराना साक्ष्ययुक्त अस्तित्व या अभिलेख प्राप्त नहीं होता है। आज जो भी परंपराएं समाज में विद्यमान हैं उन सभी परंपराओं का हजार वर्ष पूर्व से पहले का कोई भी प्रामाणिक साक्ष्य नहीं मिलता है। यानी उस समय की सभ्यता में इन परंपराओं का कोई प्रचलन नही था। दूसरा तथ्य यह दिखता है कि सन् 850 ईस्वी से पूर्व सम्यक पालन करने वाली परंपरा में विकृति लाने हेतु, एक नयी कल्पना युक्त कहानियों का सम्मिश्रण करते हुए आडंबर युक्त कर्मकांड और पाखंड युक्त परंपरा जोड़ दी गई है।

मेरा कोई भी प्रयास किसी की श्रद्धा पर आघात करने का या दिल दुखाने का नहीं है, फिर भी अगर इस सच्चाई को देखने पर किसी का दिल दुखे तो, उसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूं।

–राजीव पटेल

विषय सूची

लेखक की कलम से *5*

लकीर का फकीर **7**

1. गुड़ी-पड़वा और चैत्र नवरात्री..... 13
2. रामनवमी..... 15
3. गुरु पूर्णिमा..... 18
4. रक्षाबंधन..... 18
5. कृष्ण जन्माष्टमी 19
6. हरतालिका तीज..... 20
7. जीवतिया या जीवित्पुत्र-व्रत 21
8. नवरात्रि..... 21
9. विजयादशमी 23
10. करवाचौथ..... 24
11. धनतेरस..... 25
12. दीपावली 26
13. छठ 29
14. सरस्वती पूजा..... 30
15. होली 31

लकीर का फकीर

आज अधिकांश भारतीय लोग धार्मिक विश्वासों एवं कर्मकांडों को करते हुए **'लकीर का फकीर'** बने हुए हैं। आज हर महीने के अंदर कुछ न कुछ कर्मकांड और पाखंड युक्त परंपरा चलती ही रहती है। इस वजह से आज जो भी नयी पीढ़ी जन्म ले रही है वह उस परंपरा को जन्म के बाद मां के प्यार और पिता के मार्गदर्शन में देखती और अनुसरण करती चली जा रही है। पूर्व की पीढ़ियों में तो शिक्षा का घोर आभाव था, इस वजह से समाज के चंद स्वार्थी ठेकेदारों ने अपने लाभ हेतु जिस प्रकार की भी परंपरा की जानकारी दी या शुरुआत की, उसको छद्म बुद्धिजीविओं ने अपने दर्शन ज्ञान से समाज में विद्यमान मेहनतकश प्रजाति के दिलो-दिमाग पर बैठना प्रारंभ करवा दिया था। परंतु आज तो हर मेहनतकश समाज की नयी पीढ़ी कमोबेश शिक्षा प्राप्त करने लगी है, फिर वह अपने पूर्वजों द्वारा अपनाई गई अतार्किक परंपरा को अपने तर्क और ज्ञान से कभी समझने का प्रयास क्यों नहीं करती है? उसे सिर्फ अपने दादा-दादी की परंपरा मानकर या अपनी पूर्व की संस्कृति रही होगी, ऐसा मानकर स्वीकारे क्यों जा रही है?

किसी परंपरा पर तर्कपूर्ण बातों के साथ सोचें कि क्या ऐसा करने से किसी समाज परिवार को आज मुक्ति (शिक्षा, स्वास्थ्य, संपत्ति, सम्मान, समानता) मिल रही है या पूर्व में अपने किसी समाज परिवार को मुक्ति मिल गई थी?

मैं भी ऐसा करूंगा तो क्या मुझे भी मुक्ति मिल जाएगी?

क्या इस परंपरा अनुसार पूर्व के लोग विकार मुक्त या राग मुक्त या द्वेष मुक्त या दुःख मुक्त या गरीबी मुक्त या अशिक्षा मुक्त हो गए थे?

आज इस परंपरा को जो भी जितना ज्यादा अपना रहा है वह उतना ही ज्यादा विकार युक्त, राग युक्त, द्वेष युक्त, तृष्णा युक्त क्यों होता जा रहा है?

इन्हीं चंद बातों को लेकर प्रश्न उठना लाजिमी है और इनकी सच्चाई से रू-ब-रू होते हुए आज की और आने वाली पीढ़ी को सत्य-मार्ग का मार्गदर्शन करने का दायित्व भी है। आइए इस संदर्भ में कुछ परंपराओं का विश्लेषण करें...

आज के समाज और इस परंपरा को एक कहानी के माध्यम से देखें!

इस कहानी और आज की परंपरा पर गौर करेंगे तो आपको दोनों में काफी एकरूपता दिखेगी। किसी परंपरा की शुरुआत कैसे होती है और आने वाली नई पीढ़ी इसको अंगीकार कैसे कर लेती है, इसका भी अहसास होगा।

एक गांव में एक दंपती (पति-पत्नी) निवास करते थे, परंतु दोनों की आंखों में ज्योति नहीं थी। अंधे होने की वजह से बहुत ही मुश्किल से दोनों अपना जीवन-यापन चला पाते थे। एक समय की बात है कि, अंधी पत्नी घर के आंगन में बने चूल्हे पर रोटी बना रही थी और बगल में उसके पति महोदय बैठे हुए थे। आपस में दोनों अपनी जिंदगी के सुख-दुःख की बातें करते हुए, उदर की ज्वाला शांत करने हेतु पत्नी रोटी बनाये जा रही थी। लेकिन इन दोनों को आंखों से दिखाई न देने के कारण एक चतुर बिल्ली बगल में बैठकर बनने वाली रोटी पर नजर टिकाये हुए थी। परंतु ज्योतिविहीन होने के कारण वे दंपती बिल्ली की गतिविधि को देख नहीं सकते थे और जब देख नहीं सकते थे तो उस बिल्ली से सचेत होने या उस बिल्ली को भगा सकने की बात भी नहीं सोच सकते थे। जब रोटियां बननी समाप्त हो गयीं तो पत्नी ने अपनी बनी-बनायी रोटियों को इकट्ठा करते हुए रोटी रखने वाले डब्बे में रखने लगी, तभी उसे ऐसा महसूस हुआ कि मेरे द्वारा बनायी गई सारी रोटियां तो है ही नहीं! तत्काल वह बगल में बैठे अपने पति महोदय से पूछ बैठी कि अजी सुनते हो, आपने यहां से कहीं रोटी हटाई तो नहीं है? पति महोदय भी अचंभित होकर बोले, नही तो! मैं तो रोटी छुआ भी नही हूं!

पति-पत्नी दोनों काफी चिंतित हो गए। पत्नी बोली—आखिर रोटियां तो मैंने बनाई थी लेकिन वे रोटियां गयी कहां? बहुत सोचने-विचारने के

बाद दोनों एक निष्कर्ष पर पहुंचे कि रोटियों को कहीं पास बैठा कोई शैतान बच्चा छिपा दिया होगा या कोई जानवर या बिल्ली ले गयी होगी! हम दोनों आंख से अंधे जो ठहरे इस वजह से हम दोनों को पता भी नहीं चला। उस रात को दोनों भूखे पेट सिर्फ जल पीकर ही अपने बिस्तर पर सोने चले गए, लेकिन बिस्तर पर जाकर वे फिर से इस विषय पर काफी चर्चा और चिंतन करने लगे। चिंतन के अंत में एक निष्कर्ष पर पहुंचे कि कल से जब भी तुम रोटियां बनाओगी तो मैं पास में बैठकर एक बांस का फटका (लाठी) लेकर जमीन पर पटकता रहूंगा ताकि अगर किसी जानवर या बिल्ली की ये हरकत होगी तो वह बिल्ली या जानवर पास नहीं आएगा और अपनी बनी-बनायी रोटियां भी सुरक्षित बची रहेंगी।

प्रातःकालीन नित्यकर्मों से निवृत्त होने के बाद उसकी पत्नी उसी आंगन में बने चूल्हे पर पुनः खाना बनाने बैठ गयी और रात्रि में तय कार्यक्रम के अनुसार उसका पति भी बगल में बैठकर एक बांस का फटका लेकर जमीन पर पीटने लगा। सच में यह तरीका काफी सफल सिद्ध हुआ, क्योकि आज का बना भोजन सही सलामत रूप से बचा हुआ मिला। कोई भी जानवर उसके द्वारा बनाई गई रोटियों को इस बार नहीं ले गया। दोनों ने अपने द्वारा निर्मित भोजन को ग्रहण करते हुए अपने नित्य की दिनचर्या हेतु घर से निकल गये। संध्या को जब दोनों घर वापस आये तो सभी नित्यक्रिया से निवृत्त होकर उसकी पत्नी खाना बनाने बैठी और उसका पति उसके बगल में बैठकर बांस का फटका पुनः जमीन पर पीटने लगा। रात्रि भोजन के पश्चात दोनों बिस्तर पर चले गए। लेकिन यह बांस का फटका पटकने के सफल प्रयोग को प्रतिदिन करने हेतु आपस में प्रतिबद्ध हो गए। शनैः-शनैः भोजन बनाने के समय बांस पटकने वाली प्रक्रिया अब एक दिनचर्या में बदल गयी।

आगे उसी अंधे दंपती (पति-पत्नी) को एक सुन्दर से पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। वह पुत्र उसी आंगन में खेलकर माता-पिता के स्नेह और प्यार में बड़ा हो रहा था और उस फटका मारने की परंपरा को भी देखता आ रहा था। बच्चा आंख से अंधा नहीं था इस वजह से अपने घर में हो रहे सभी रीति-रिवाज को गौर से देखते हुए बड़ा हुआ। जब किसी काम से

उसके पिताजी कहीं चले जाते थे और उसकी माताजी खाना बनाती थीं तब उसकी मां अपने बच्चे को ही फटका मारने हेतु आवाज लगाती थी। बच्चा भी सुशील था, इस वजह से अपनी मां की कही बात को मानते हुए चूल्हे के पास बैठकर अपने पिताजी के जैसा जमीन पर फटका मारने लगता था। धीरे-धीरे वह बच्चा भी इस कार्य में इतना निपुण हो गया कि पिताजी के रहने पर भी जिद करते हुए फटका मारने का काम वह स्वयं करने लगता। अब उस बच्चे के दिलो-दिमाग पर यह कार्य अपने पूर्वजों द्वारा प्रदत्त रिवाज-परंपरा के रूप में उसकी जिंदगी के मुख्य दिनचर्या का एक हिस्सा बन गया था।

धीरे-धीरे समय बीतता रहा और उस अंधे पति-पत्नी के बच्चे की भी आयु बढ़ रही थी। उसका बच्चा अब अपने यौवन की अंगड़ाई ले रहा था। जिस वजह से उसके माता-पिता को अपने बच्चे की शादी की चिंता सताने लगी। साथ-साथ मन में यह भी बातें आने लगीं कि अगर अपने बड़े होते बच्चे की शादी कर दी जाये तो आने वाली बहू से हम दोनों को गृह-कार्य में भी काफी सहायता मिलेगी। इस सोच और अरमान के साथ वे अपने सगे-संबंधियों से अपने बेटे हेतु एक सुन्दर बहू की तलाश करने को कहने लगे। अंततः एक सुन्दर-सुशील और समझदार कन्या का रिश्ता भी आ गया। लड़की पक्ष और लड़का पक्ष वालों ने बहुत ही शानो-शौकत के साथ अपने बच्चे की शादी कर दी। अंधे माता-पिता को अब खाना बनाने से मुक्ति मिल गयी।

अब बहू ने घर की रसोई से लेकर घर का जो भी काम था, उन सभी कामों की जिम्मेदारी बखूबी निभाना शुरु कर दिया। बहू सुबह-शाम उस आंगन में बने चूल्हे पर खाना बनाने की तैयारी करने लगी। लेकिन जब भी बहु खाना बनाने को आये तब उसका पति भी उसकी बगल में बैठ जाये। इस प्रकार की गतिविधी को देखकर बहू मन-ही मन बहुत ही खुश रहने लगी कि चलो मेरा पति बहुत ही प्यार करने वाला मिला है, इस वजह से जब भी मैं खाना बनाने आती हूं तो मेरा पति मेरे साथ बैठकर मुझसे बातें करने लगता है। लेकिन ये क्या! खाना बनना जैसे ही शुरू हुआ उसका पति एक बांस का फटका लेकर जमीन पर पटकने लगा। बहू को यह सब काफी अटपटा लगा, लेकिन नयी-नयी बहुरिया होने के नाते वह कुछ भी

नहीं बोली। एक दिन बीता, दो दिन बिता लेकिन यह बांस पटकने की प्रक्रिया प्रतिदिन उसके पति द्वारा ऐसे ही चलती रही, ...आखिरकार बहू एक दिन जिज्ञासावश अपने पति से इस फटका पटकने के रहस्य के बारे में पूछ बैठी। अच्छा! ये बताइए कि मैं जब भी खाना बनाने बैठती हूं तब आप मेरे साथ बैठकर जमीन पर बांस का फटका क्यों पटकते हैं?

उसके पति ने काफी सोचकर बताया कि जब से मैंने जन्म लिया और अपना होश संभाला है, तब से मैं अपने घर में अपनी माता जी को खाना बनाते देखता था, तो उस समय पिताजी भी मां के बगल में बैठ जाते थे और ये बांस का फटका जमीन पर पटकने लगते थे और जिस दिन पिताजी घर पर नहीं रहते, किसी काम से बाहर चले जाते थे तो इस कार्य की जिम्मेदारी मुझे मिलती थी। उसी समय से मैं भी इस कार्य को देखता और करता आ रहा हूं और इस प्रकार बांस जमीन पर पटके बिना अपने घर में खाना बनाने की प्रक्रिया भी पूरी नही होती थी। यह हमारे घर की एक शुभ परंपरा है, जो आज मैं भी तुम्हारे साथ कर रहा हूं। बस! मैं इतना ही जानता हूं। इससे ज्यादा मुझे कुछ नहीं पता। मैं अपनी पुरानी परंपरा से जुड़ा हूं। यह विश्वास से जुड़ा हुआ मामला है और पूर्वजों की आस्था से जुड़ा हुआ है इसलिए मैं भी अपने पूर्वजों की परंपरा को बचा के रखा हूं।

बहू काफी समझदार थी। इस वजह से उसने उस समय चुप रहना ही उचित समझा, लेकिन अंदर-ही-अंदर वह इस परंपरा की सच्चाई जानने को उत्सुक रहने लगी। वह हमेशा इस मौके का इंतजार करने लगी की कब उसकी सास प्रसन्नचित हो और वह इस परंपरा की बात सासु मां के सामने रखे! एक दिन एकांत देखकर बहू अपनी सास से इस फटका वाली परंपरा की बात पूछ ही बैठी—अच्छा सासु मां जी! यह बतायें कि अपने घर में खाना बनाते समय यह बांस का फटका जमीन पर पटने की परंपरा क्यों है? सासु मां तो पहले इस बात को सुनकर अनसुना करके निकल गयी, लेकिन बहू ने भी सोच लिया था कि आज सासु मां से इसकी जानकारी लेना ही है! सासु मां, सासु मां जी बताइये न! यह परंपरा कब से अपने घर में और क्यों है? इसका उद्देश्य क्या है? बहू बेटी जैसी जब बहुत जिद करने लगी, तब सास मजबूर होकर अपनी

बहू को पूर्व वाली सारी घटना बिल्ली-रोटी की कहानी सुना दी। बहू भी समझ गयी कि मेरे सास और ससुर जी आंख रूपी रोशनी (ज्ञान) के न होने की वजह से किसी भी जानवर को देख नहीं पाते थे, इस वजह से अच्छी प्रक्रिया (बांस का फटका जमीन पर मारना) अपनाये थे, लेकिन मेरे पति और मैं तो आंख के प्रकाश से अंधे (अज्ञान) नहीं हैं। मैं तो बिल्ली (पाखंड) को देख सकती हूं, भगा सकती हूं, छोड़ सकती हूं, शुद्ध कर सकती हूं, लेकिन फिर भी यह दकियानूसी परंपरा, मूर्ख बनाने वाले आडंबर, अज्ञानता वाले कर्मकांड को क्यों निभाए जा रही हूं? उस बहू के जैसा आप भी तर्कशील होकर सोंचे! बनें! और करें!

बहू अपनी सासु मां से जानकारी प्राप्त कर अपने पति से वार्ता करने को काफी उत्सुक हुई और एक दिन एकांत देखकर अपने पति के साथ बैठकर माता जी से प्राप्त पूर्व की घटनाओं की जानकारी और अपनी आंखों की रोशनी नहीं होने के कारण उसका समाधान ढूढ़ना और फिर उनका समाधान बाद में एक परम्परा और कर्मकांड के रूप में स्थापित होने की बात बताई। बहुत ही तार्किक ढंग से पत्नी ने अपने पति को समझाया कि आपके माता-पिता आंख (ज्ञान) के अंधे थे इस वजह से बिल्ली (धूर्त) से अपनी रोटी को सुरक्षित बचाने हेतु प्रतिदिन एक परंपरा के तौर पर जमीन पर बांस का फटका मारते थे, ताकि कोई बिल्ली या जानवर उनके पास नहीं आये और उनके द्वारा निर्मित रोटियों को नहीं ले जा सके, लेकिन हम आप तो आंख (ज्ञान) के अंधे नहीं हैं। हम दोनों तो देख सकते हैं कि कोई बिल्ली या जानवर आया या नहीं! आएगा तब हम उसे भगा देंगे, तो फिर क्यों उस अंधी परम्परा को अपने पूर्वजों की परंपरा मान कर पालन कर रहे हैं? उसका पति भी काफी समझदार था इस वजह से वह अपनी पत्नी की तर्कपूर्ण बातों को सुनकर एक बार में ही सारी बातों से अवगत हो गया; सिर्फ स्वयं ही अवगत नहीं हुआ, बल्कि इस प्रकार की बातों से अपनी मित्र मंडली को भी संतुष्ट करने लगा।

लेकिन आज तो पूरा पिछड़ा और शोषित समाज ही अपने ज्योतिविहीन पूर्वजों यानि उनके ज्ञान से अपरिचित होने की बात मानकर चल रहा है। पहले पूर्वजों को ब्राह्मणों ने साजिश के तहत शिक्षा से वंचित रखकर

अशिक्षित और अज्ञानी बनाया, फिर ब्राह्मणों ने प्रत्येक पाखंड को एक फटका मारने की परम्परा की तरह उनके दिलो-दिमाग पर बैठा दिया। परंतु उस अज्ञानता से निकालने हेतु हमारे महापुरुषों ने अपने पूर्वजों को बहुत ही समझाने का प्रयास किया और आज भी करते आ रहे हैं, फिर भी आज का बहुसंख्यक समाज (पिछड़ा और अनुसूचित) बाबासाहेब के द्वारा प्रदत्त संवैधानिक ज्ञान का अधिकार और संवैधानिक मार्ग पर उस बहुरिया जैसे तर्कशील होकर चलने के बावजूद भी उन अनावश्यक परंपराओं को बंद करने का निर्णय नहीं लेता है। वर्तमान समाज, शिवाजी महाराज के स्वराज्य, राष्ट्रपिता फुले जी की शिक्षा, शाहूजी के सामाजिक समानता का अधिकार, बाबासाहेब द्वारा प्रदत्त न्यायिक अधिकार मिलने के बाद भी पूर्वजों की अज्ञानता वाली परंपरा के सामने अपनी आज वाली तर्कशील शक्ति लगाने की क्षमता विकसित नहीं कर पा रहा है।

आज की हर एक परम्परा उसी बिल्ली और बांस के फटका जैसी कहानी और परंपरा बनकर समाज को मुंह चिढ़ा रही है। जरूरत है इस अज्ञानता रूपी परम्परा को अपनी तर्कशक्ति से सुधारने की, बदलने की, समझने की, छोड़ने की और तार्किक विवेचना करने की!

आज के बुद्धिजीवी लोगों को इस पर 'लकीर का फकीर' नहीं बनना चाहिए।

आइए देखते हैं "आज की परंपरा और अज्ञानता रूपी इस फटके पर आज के लोगों द्वारा **'लकीर का फकीर'** बनते हुए।"

1. गुड़ी-पड़वा और चैत्र नवरात्री

चैत मास की शुक्ल प्रतिपदा को गुड़ी पड़वा मनाया जाता है। शुरुआत में गुड़ी-पड़वा को सिर्फ महाराष्ट्र में मनाया जाता था, लेकिन इधर कुछ वर्षों से भारत के अन्य राज्यों में भी इसे मनाने की परंपरागत शुरुआत हो गयी है।

'गुड़ी-पड़वा' शब्द का अर्थ मराठी में 'गुड़ी' यानी किला और 'पड़वा' यानी गिराना या पाड़ना है, अर्थात किला या साम्राज्य को गिराना, कब्जा करना है।

रोमन तिथि के अनुसार 11 मार्च, 1689 ईस्वी में ब्राह्मणों ने मनुस्मृति के नियमानुसार छत्रपति संभाजी महाराज की नाक, कान, और चमड़ी उधेड़ते हुए हत्या कर दी थी और उसके बाद ब्राह्मणों ने उनके सिर को भाले (बांस का नुकीला औजार) में लटकाकर अपने गांव में जुलूस निकाल कर व शक्कर बांट कर खुशी मनायी थी।

मृतक संभाजी के सिर को भाले पर लटकाकर ब्राह्मणों ने यह संदेश दिया था कि आज से कोई भी स्वराज्य हेतु आंदोलन करेगा तो उसका भी हश्र संभाजी के जैसा ही किया जायेगा। इसे आज भी ब्राह्मणों द्वारा एक बांस या भाले में प्रतीकात्मक रूप से सिर के जैसा लोटा को उल्टा करके लटकाया जाता है और उसके साथ में बांस के सहारे महिलाओं का साड़ी ब्लाउज़ भी बांधा जाता है।

इस परंपरा पर ब्राह्मणों की ऐसी मान्यता है कि हमारे मनुस्मृति के खिलाफ जो भी स्वराज्य या शासन चलाने की सोच रखेगा उसका हश्र ऐसा ही करते हुए बांस से उल्टा लटका देंगे और साड़ी-ब्लाउज़ बांधने का अर्थ है कि तुम्हारी घर क़ी महिलाओं का सम्मान भी अपने अधीन कर लेंगे। ब्राह्मण समाज इस परम्परा को उसी समय से मनाते चला आ रहा है और इस निश्चित दिन को संभाजी की हत्या और अपनी विजय जुलूस की खुशी मानते हुए शाम को गुड़ी को उतार देता है और रात्रि में मिष्ठान भोजन का आनंद लेता है।

लेकिन आज इस परंपरा को ब्राह्मणों के साथ-साथ बहुजन समाज के लोग भी देखा-देखी मनाने लगे हैं। ब्राह्मण समाज इस परम्परा पर दो प्रकार का फटका बनाकर समाज के लोगों को दिखाता है। पहला फटका यह बताता है कि यह हत्या और उसके सिर को प्रतीकात्मक रूप से लटकाने की परंपरा रावण की हत्या से चली आ रही है।

ब्राह्मणों ने क्या फटका मारा है!

रावण की हत्या किस काल में? (ईसा से 600 वर्ष पूर्व के पहले की कहानी कोई भी कुछ जान नहीं पाता है, लेकिन ये ब्राह्मण 11 रुपया में मंगल और शनि ग्रह तक की जानकारी लेकर आ जाते हैं।)

रावण की हत्या की खुशी है तो सिर्फ महाराष्ट्र में ही क्यों, पूरे भारत में क्यों नहीं?

आज ब्राह्मण इसी गुड़ी-पड़वा को आगे बढ़ाते हुए समस्त भारत में एक नए पर्व के रूप में दिखाने लगा है। यानी ब्राह्मणों ने संभाजी महाराज की हत्या कर शिवाजी महाराज द्वारा स्थापित स्वराज्य को आज ही के दिन खत्म करते हुए नए रूप से पुनः ब्राह्मणी राज्य स्थापित किया था।

इस 'लकीर का फकीर' रूपी फटके को समझने वाले बहुजन अभी भी ब्राह्मणों के दीवाने ज्यादा लगते हैं।

2. रामनवमी

भारत भी विचित्र भावनाओं से भरे हुए लोगों का एक देश है। जिस देश में धर्मानुगत सर्वोच्च जाति का व्यक्ति, जो इस समाज के संस्थापक की भूमिका में रहा है और जिस समाज के अधिकांश लोग इस बात को स्वीकार करते हैं कि रामायण, गीता, महाभारत एक काव्य-ग्रंथ हैं यानी कि यह एक काल्पनिक ग्रंथ हैं, फिर इन काव्य-ग्रंथों के पात्रों का जन्मदिन मनाने की परम्परा की शुरुआत कैसे करवा दी?

सबसे ज्यादा आश्चर्य तो तब महसूस होता है जब भारत में प्रमाणित इतिहास—जो 850 ईस्वी से पूर्व था, जिनके सभी सम्राटों को सत्यापित किया जा चूका है व जिनका अवशेष भरा पड़ा है, और जिनको पुरातात्विक ज्ञाता भी प्रमाणित कर चुके है, उस काल में रहे सम्राटों का जन्म कब हुआ था, ये आज तक किसी भी श्रुतिज्ञाता या पुरातत्ववेत्ता को मालूम नहीं है। लेकिन ये वैदिक श्रुतिज्ञाता न जाने किस ज्ञान-विज्ञान के द्वारा अपने काल्पनिक या प्रमाणित जो भी हो, उस कहानी के पात्रों की जन्मतिथि को मालूम कर उनका जन्मदिन मनाते चले आ रहे हैं।

कुछ बताएंगे क्या! भारत के श्रुतज्ञानी किस कार्बन डेटिंग के द्वारा काव्यग्रंथ के पात्रों की जन्मतिथि निकाल लिए और फिर भारत के बहुजनों की भावनाओं को बांधने हेतु एक बांस का फटका भी बना दिया, जिसे लोग आज अपने ज्ञान रूपी आंखों से नहीं देख पा रहे हैं और प्रत्येक वर्ष उस बांस के फटके को जमीन पर पीट-पीट कर खुश हो रहे हैं?

इसी रामनवमी के दिन लगभग पूरे भारत के अधिकांश भागों में एक बांस में किसी काल्पनिक आलंबन का फोटो लगाते हुए एक झंडा-पताका लगाने की परंपरा है। इस पर ऐसी मान्यता है कि इस झंडा में बने फोटो से घर की सुरक्षा होती है।

जब ऐसी धारणा है तो फिर उस काल्पनिक आलंबन का चित्र किसी बांस में क्यों लगाते हैं! क्यों नहीं उस चित्र को अपने मकान के सबसे ऊपरी तल्ले पर किसी सुरक्षित स्थान पर सुशोभित करते हैं? भाईसाहब! यदि आपको भी किसी जगह की रखवाली करनी हो तो क्या आप किसी बांस का आलंबन लेंगे या किसी सुव्यवस्थित स्थान का?

जबकि इसकी सच्चाई कुछ और ही है, यह सम्यक ज्ञान-विज्ञान का हिस्सा है, जो सम्यक सभ्यता से चली आ रही है। आज सिर्फ उस सम्यक सभ्यता वाली परम्परा की नकल करते हुए उस बांस में एक काल्पनिक आडंबर का फोटोयुक्त झंडा लगाया गया है, जिसका कोई भी औचित्य नहीं है।

इसके पीछे का ज्ञान-विज्ञान यह है कि वर्षा ऋतु प्रारम्भ होने से पहले ही इस व्यवस्था को संपन्न कर लिया जाता था। क्योकि वर्षा ऋतु में आकाश से बिजली (ठनका) गिरती है, जो जान-माल को नुकसान पहुंचाती है। उस जमाने में ऊंचे-ऊंचे मकान नहीं होते थे। प्रत्येक मकान साधारण घास-फूस-खपरैल के होते थे, सिर्फ सम्राटों का किला ही ऊंचा होता था, लेकिन उसकी ऊंचाई भी ज्यादा नहीं होती थी। इस ऊंचाई से ज्यादा ऊंचा बांस धरती के सहारे खड़ा किया जाता था, ताकि ठनका गिरने पर वह ठनका बांस के सहारे धरती के अंदर समाहित हो जाये और आस-पास किसी भी प्रकार के जान-माल का नुकसान नहीं हो। यह बांस वाली विधि आज के विज्ञान द्वारा भी प्रमाणित है कि वर्षा से भीगने के बाद बांस बिजली के सुचालक का काम करता है।

इसी सिद्धांत के कारण जब इस मौसम में बिजली गिरती है तो वह (बिजली) घनात्मक स्वभाव के कारण अपनी आकर्षण ऋणात्मक स्वभाव वाली धरती की ओर तेज गति से भागती है, तो धरती से सम्पर्क स्थापित करने के लिए बांस सबसे पहले इसे सहायता प्रदान करता है और इस

कारण जान-माल की क्षति नहीं होती है। इसे आप भी अपने ज्ञान से अनुभव कर सकते हैं। बिजली (ठनका) हमेशा ऊंचे पेड़, ऊंची अटालिका, ऊंचे खम्भे पर ही ज्यादा क्यों गिरती है; क्योंकि बिजली को सबसे पहले जो भी ऋणात्मक स्थान में पहुंचाने में मदद करेंगे उसी के सहारे सबसे पहले वह अपनी ऊर्जा को धरती में समाहित करेगी, अन्यथा अपनी ऊर्जा से जान-माल को नुकसान पहुंचाएगी। इसी को ध्यान में रखते हुए सम्यक समाज के ज्ञानी लोग बिजली (ठनका) से बचने हेतु वर्षा के मौसम से पूर्व के समय कभी भी अपने घरों से ऊंचे एक बांस को जमीन यानी धरती से संपर्क देते हुए अपने घरों के पास लगाते थे ताकि बिजली (ठनका) जैसी प्राकृतिक विपदा की क्षति को कम-से-कम किया जा सके।

लेकिन दुर्योग यह है कि सम्यक सभ्यता को खत्म करने वाले आडंबर और पाखंडी लोगों ने उस ज्ञान-विज्ञान वाली परम्परा को छुपाते हुए, उसे एक पाखंडपूर्ण रीति-रिवाज में बदलते हुए काल्पनिक फोटोयुक्त ध्वज से सुरक्षा की कपोल-कल्पित कहानी बना दिया है। आगे इस परम्परा के संस्थापक परिवार के उत्तराधिकारियों ने ज्ञान के अभाव में इसे एक फटका समझकर, उस बिजली के धनात्मक स्वभाव को पृथ्वी के ऋणात्मक स्वभाव में बदलने वाली प्रक्रिया को नहीं जानते हुए अपने भक्तों में कर्मकांड का प्रचार करते हुए उनके ऊंचे-ऊंचे भवनों के ऊपर भी पताका युक्त बांस लगवाने लगे। भाई! पताका को तुम कहीं लगा दो लेकिन जब तक तुम अपने घरों की ऊंचाई से लेकर धरती के ऋणात्मक स्वाभाव के बीच कोई सुचालक (बांस या आज की धातु के तार) को नहीं जोड़ते हो, तब तक यह एक अंधे का फटका मात्र ही है।

लेकिन अब नक्शा और मकान बनाने वाले इंजीनियर लोग आज के अपने ज्ञान-विज्ञान से अपने द्वारा बनाए गए मकानों की सबसे ऊंची चोटी से लेकर जमीन तक के भाग को जोड़ने हेतु एक सुचालक का प्रयोग करने लगे हैं फिर भी ब्राह्मणी अंध-भक्त आज अपने घरों के ऊपर ही बांस में काल्पनिक फोटो-युक्त आलंबन लगाना नहीं भूले हैं; इस फटके को अंधे का फटका समझकर पीटते आ रहे हैं और आज जानकारी होने के बाद भी लकीर (लीक) का फकीर बने हुए हैं।

3. गुरु पूर्णिमा

आषाढ़ पूर्णिमा को गुरु पूर्णिमा का नाम दिया गया है। इस दिन सभी गुरुओं के अनुयायी बहुत ही धूम-धाम से इस गुरु पूर्णिमा को मनाते हैं। लेकिन सर्वप्रथम यह दिन किस गुरु के प्रामाणिक जन्म या ज्ञान प्राप्ति से संबंधित है, इस पर सभी भाई चुप्पी साध लेते हैं। हां, एक बात की कथा जरूर प्रचारित है कि यह दिन महाभारत के रचयिता व्यास जी का जन्मदिन है। वे संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे और उन्होंने ही 'वेद' की रचना की थी, इसलिए उन्हें वेदव्यास भी कहा जाता है। इनके जन्म और वेद की रचना काल का कोई साक्ष्य नही है। इस 'संस्कृत' लिपि का मिलना और इस 'वेद' का लिखित प्रमाण मिलना, दोनों में सामंजस्य नहीं है। समझ गए न! जहां एक तरफ बुद्धिजीवी लोग महाभारत को काव्य-ग्रन्थ का दर्जा देते हैं और दूसरी ओर वही लोग व्यास जी द्वारा लिखित होने का उसका प्रचार भी करते हैं। दूसरी बात कि आज की 'संस्कृत' जैसी भाषा का कोई भी पुरातत्त्विक अवशेष और शिलाओं का नामां-निशान ईसवी सन तक नहीं है, लेकिन फिर भी व्यास जी अत्यंत प्राचीन काल में इस लिपि में वेदों की रचना भी कर दिए। समाज को बहुत ही अच्छा फटका दिए हैं कि, तुम लोग भी उस अंधे के बच्चे जैसी परम्परा बनाकर बांस का फटका पटकते रहना।

वास्तविक रूप से देखें तो यह गुरु परंपरा एक सम्यक परंपरा थी। उसी दिन यानी आषाढ़ पूर्णिमा के दिन सारनाथ में प्रथम बार मार्गदाता 'तथागत सम्यकसंबुद्ध' ने पांच परिव्राजकों को ज्ञान की दीक्षा दी थी, जिसे बाद के समय में आडंबरी और पाखंडी लोगों ने मिलकर काल्पनिक बांस का फटका बना दिया है। जिस पर लोग आज भी लकीर का फकीर बने हुए हैं।

4. रक्षाबंधन

रक्षा बंधन लोक पर्व की श्रेणी में आता है। इस परंपरा में यह प्रचलित है कि एक भाई अपनी बहन से राखी बंधवाता है, तत्पश्चात वह भाई अपनी बहन को रक्षा करने का वचन देता है। लेकिन इतिहास में ऐसे कम ही भाई दिखे जो कभी किसी विपत्ति में अपनी बहन की रक्षा करने आये हैं।

चाहे वह महिला जोधा बाई हो या लक्ष्मी बाई। यह परंपरा सिर्फ बांस का फटका बनी हुई ही दिख रही है, जिसे प्रत्येक वर्ष लोग पीटते आ रहे हैं।

सही अर्थों में यह परंपरा भारत और नेपाल के अंदर तथाकथित शासक वर्ग और ब्राह्मणी वर्ग के लोग मनाते हैं, जिसका संबंध ब्राह्मणों द्वारा क्षत्रियों के हाथों में रक्षा सूत्र बांधते हुए अपनी सुरक्षा का वादा लेने से है। ब्राह्मणों ने इस परंपरा की शुरुआत भारत के मूल बहुजनों के प्रतापी राजा बलि को छलकर तथा उनके हाथ में एक काल्पनिक धागा बांधते हुए की थी, जिसको बाद में ब्राह्मणों ने 'रक्षा सूत्र' का नाम देते हुए, अपनी सुरक्षा का वादा लिया था।

इस रक्षा सूत्र को ब्राह्मण द्वारा बांधते समय संस्कृत भाषा का एक वाक्य इस प्रकार उच्चारित किया जाता है–

येन वद्धो बलिराजा दानवेन्द्र महाबलः।
तेन त्वामी प्रतिवध्नामि रक्षे माचल माचल॥

इसका हिंदी अनुवाद है–*जिस रक्षा सूत्र से महान शक्तिशाली दानवेन्द्र राजा बलि को बंधा था, उसी रक्षा सूत्र से मैं तुमको बांधता हूं, तुम मेरी रक्षा करना, रक्षा करना, कभी भागना नहीं! विचलित नहीं होना।*

आप समझ गए होंगे! जिस प्रकार उस समय ब्राह्मण लोग छलपूर्वक राजा बलि को बांधकर अपनी रक्षा का वचन लिए थे और उसी वचन से ब्राह्मणों ने राजा बलि का सारा राज-पाट, यहां तक की उनके प्राणों की आहुति भी ले ली थी उसी प्रकार आज भी ब्राह्मण लोग उस परंपरा को बचाए हुए हैं। आज राजा तो नहीं रहे, लेकिन उसी प्रकार सभी संपन्न और सक्षम लोगों को रक्षा सूत्र बांधते हुए ब्राह्मण उनसे अपनी सुरक्षा का वचन लेते हैं।

5. कृष्ण जन्माष्टमी

भाद्र कृष्णपक्ष की अष्टमी को लोग कृष्ण जी का जन्म दिन मनाते हैं। लोगों की मान्यता है कि कृष्ण जी का जन्म पंचांग बनने से पूर्व इसी दिन हुआ था और जब जन्म पंचांग बना तो उस जन्मदिन को भादो अष्टमी का नाम दिया गया। ये बात मैं इसलिए कह रहा हूं, क्योंकि भारत

का शक-संवत पंचांग का गणना काल आज से 1939 वर्ष पूर्व और विक्रम-संवत पंचांग का गणना काल 2074 वर्ष पूर्व है। इसके पूर्व में एक पंचांग की चर्चा और मिलती है, जो महामानव गौतम बुद्ध के जन्मदिन से प्रारंभ होता है यानी उस पंचांग का गणना काल 2580 वर्ष पूर्व का है। लेकिन तीनों पंचांग के अंदर ऐसे किसी भी व्यक्ति के जन्म का प्रमाण नहीं मिलता है और इसके पूर्व की गणना अज्ञात है। फिर आप लोग लकीर के फकीर के जैसा ये बांस का फटका क्यों पटक रहे हैं कि, कृष्ण जन्माष्टमी भादो महीना में आती है?

दूसरी बात, लोग कहते हैं कि कृष्ण की जन्मभूमि मथुरा नगरी में थी। जबकि इस नगर का स्थापना काल ऊपर वर्णित पंचांग के अंदर के काल का है। उस पंचांग के पहले इस मथुरा नगरी का कोई अवशेष नहीं मिलता है। इस मथुरा नगर को ईसा के बाद कुषाण सम्राट ने बसाया था और अपनी राजधानी भी बनाया था। आज किसी भी भाई को मथुरा का पुरातात्विक इतिहास देखना है तो वे मथुरा नगर में अवस्थित संग्रहालय में जाकर देख सकते हैं। मथुरा की खुदाई से प्रमाणित अवशेष उस संग्रहालय में रखें हैं, जिसमें सबसे ऊपर प्राप्त ब्राह्मणी काल के अवशेष हैं, उसके बाद दूसरी परत पर मुगल काल के अवशेष हैं और सबसे नीचे की परत से सम्राट कुषाण काल की मूर्ति एवं अन्य कुषाण कालीन सामग्री मिली हैं। उसके नीचे अंधकार है। अब आप स्वयं तय करें कि किस मथुरा में कृष्ण जी का जन्म हुआ था या यह भी सिर्फ एक फटका है जो सभी पीटते आ रहे हैं?

6. हरतालिका तीज

यह पर्व शुक्ल पक्ष तृतीया भादो को मनाया जाता है। यह विशुद्ध रूप से अंधे पति-पत्नी हेतु बांस का फटका ही है जिसे आज भी लोग परंपरागत रूप से पीटते चले आ रहे हैं। इस व्रत कथा में कहा गया है कि जो कोई भी विवाहित महिला स्वच्छ मन से इस दिन निर्जला-व्रत रखेगी, उसका सुहाग सदा हरा-भरा रहेगा। कितना बड़ा फटका है यह! इस देश में क्या विधवा महिलाएं नहीं हैं? क्या वे तीज व्रत नहीं करती थीं? या फिर करती थीं तो आप उनके निर्जला-व्रत पर उंगली उठा रहे हैं कि वे गंदे मन से

करती थीं? तीज व्रत करने के बाद भी उनके सुहाग क्यों उजड़ गए? क्या कोई इस ब्राह्मणी फटका का जवाब देगा? आज आप लोग इस पर लकीर का फकीर क्यों बने हुए हैं?

7. जीवतिया या जीवित्पुत्र-व्रत

फटका से भी बड़ा महाफटका! यह पर्व अश्विन कृष्ण पक्ष की अष्टमी को मनाया जाता है। प्रत्येक वर्ष माताओं द्वारा यह व्रत करने के बाद भी हर दिन अनगिनत माताओं की गोद सुनी होना इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। लेकिन इस परंपरा को मानने वाले अपनी ज्ञान रूपी आंख रहते हुए भी फटका मारने के आदी हो गए हैं। सबसे ज्यादा आश्चर्य उस समय होता है जब कुछ अशिक्षित परिवार के लोग इसी जीवतिया के दिन अपने बच्चों के साथ किसी नजदीक के नदी नालों में स्नान करने जाते हैं और अपने बच्चे को उसी नदी में जल समाधी लगाते या डूबते देखते रह जाते हैं। क्या कहेंगे इस बेहूदी परम्परा को! आप लोग लकीर का फकीर बनना छोड़ें।

8. नवरात्रि

आश्विन शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से नौ दिनों तक चलने वाले इस व्रत को नौरात्रा कहते हैं। इस व्रत में नौ दिनों तक कलश बैठाकर दुर्गा पाठ करने की परम्परा है। दुर्गा पाठ की पुस्तकें संस्कृत भाषा में भी आती हैं, लेकिन अब इसी संस्कृत का हिंदी अनुवाद भी आने लगा है। आपको अगर हिंदी अनुवाद नहीं मिले तो किसी अच्छे जानकर से उसी संस्कृत पुस्तक का हिंदी अनुवाद करा लें। अब आप भी पढ़कर देखें। ऐसे इस दुर्गापाठ की कहानियों में प्रत्येक पुस्तक में अलग-अलग थोड़ी मोड़ है, परन्तु सबमें इस दुर्गा पाठ का यह सार मौजूद है कि दुर्गा नाम की देवी और राक्षस में युद्ध होता है। लेकिन यह युद्ध किस काल में होता था? नौ रात्री यानी नौ रातों में ही युद्ध क्यों होता था? दिन में युद्ध क्यों नहीं हुआ? किस प्रदेश में युद्ध होता था? उस भयंकर युद्ध विभीषिका की कोई श्रुति-स्मृति या साक्ष्य उस दुर्गा पाठ कथा लिखने वाले लेखक तक कैसे पहुंचा? आज तक इस पर स्पष्ट रूप से कोई जवाब नहीं देता है।

आज भारत की लगभग सभी सभ्यता का पुरातात्विक अवशेष प्राप्त है, लेकिन यह सुर-असुर का युद्ध कब हुआ? कहां हुआ? ये जानकारी आज तक किसी को पता नहीं है। फिर भी आज लोग लकीर के फकीर बने हुए हैं।

इस दुर्गा पाठ के ऊपर एक लोक कथा काफी मशहूर है कि, जो भी इस दुर्गा पाठ को करेगा उसे काफी सुख-शांति, द्वेष-वैर से मुक्ति, तृष्णा से मुक्ति मिलेगी! लेकिन जो भी भाई-बहन इस दुर्गा पाठ को करते हैं या किये हैं, क्या वे लोग इन विकारों से मुक्त हो गए हैं?

भागवत पुराण में इस दुर्गा पाठ की चर्चा है। उस भागवत पुराण के अनुसार मां दुर्गा **श्रेष्ठ पुरुष** की रक्षा के लिए जन्मी थीं। यहां श्रेष्ठ पुरुष के नाम से किसको संबोधित किया गया है? श्रीमद्भागवत कथा के अनुसार दुष्टों से वेदों और पुराणों की रक्षा करने के लिए मां दुर्गा का जन्म हुआ था। यह दुष्ट कौन था?

ब्राह्मणों द्वारा वेद-पुराण की संस्कृति को स्थापित करने के लिए 7वीं सदी में हर्षवर्द्धन (606-647 ईस्वी) के काल से ही तथाकथित ब्राह्मणों का उदय और सम्यक समाज (बौद्ध समाज) के बीच संघर्ष आरंभ हो गया था। कालांतर में यह बढ़ता गया। दूसरी बार इस भारतीय ब्राह्मणी समाज से इस्लामी समाज का और तीसरी बार इस ब्राह्मणी समाज से ईसाइयत वालों का सामना हुआ। अब आप तय करें कि दुर्गा नाम की देवी जी इन सबों से कब लड़ीं?

ब्राह्मणी ग्रंथों के अनुसार मां दुर्गा देवी की आदिशक्ति से पूरे विश्व का संचालन होता था। जब दुर्गा देवी से पूरे विश्व का संचालन होता था तो इनके अनुयायी सिर्फ भारत में ही क्यों मिलते हैं? इनकी शेर वाली मूर्ति भी सिर्फ भारत में ही क्यों मिलती है? क्यों भारत के अलावा किसी दूसरे देश के लोग इनकी महिमा समझ नहीं पाए अथवा इनकी सच्ची महिमा समझ गए इसलिए इनको स्वीकार नहीं किए?

देवी जी अपनी महिला प्रजाति की कन्याओं के ऊपर हो रहे अत्याचार को आज तक रोकने हेतु कोई युद्ध नहीं कर पाई हैं! कई धर्माचार्यों के आश्रम में हो रहे महिला व्यभिचार को रोकने की कोई सोच बना नहीं पाई

हैं! कन्या पूजन करवाती हैं, लेकिन कन्या भ्रूण हत्या पर तो कभी कोई युद्ध की चर्चा ही नहीं है। आखिर ऐसा क्यों?

इस परम्परा की कोई सच्चाई नहीं है, फिर भी इसको फटका बनाकर इसके हर अनुयायी लोग जमीन पर पीटते हुए आज लकीर के फकीर बने जा रहें हैं।

9. विजयादशमी

विजयादशमी पर एक लोक कथा प्रचलित है कि अयोध्या के राजा राम ने लंकापति रावण को इसी दिन मारकर अपनी पत्नी सीता को मुक्त करवाया था।

प्रश्न है कि कौन राम और कौन रावण?

प्रमाण कहता है कि अगर किसी राजा का अपना राज्य होगा तो उस राज्य की अपनी मुद्रा होगी। उस राज्य की अपनी सीमा होगी। उस राज्य की अपनी लिपि होगी। उस राज्य के राजा का भव्य महल होगा। लेकिन आज तक राजा राम और लंकापति रावण के राज्य की कोई मुद्रा प्राप्त नहीं हुई है। किसी के राज्य की कोई सीमा नहीं मिली है। किसी का भव्य महल या विशाल नगर का प्रमाण आज तक नहीं मिला है। आज तक राम या रावण के समय की कोई लिपि या भाषा की सील-मोहर प्राप्त नहीं हुई है। फिर ये कैसी भव्यता, कैसी सत्यता, कैसी प्रामाणिकता।

वैसे एक बात सच है कि इस मनु धर्म के संस्थापक के वंशजों से चर्चा करने पर वे लोग स्वीकार करते हैं कि राम और रावण की कहानी काल्पनिक है। फिर राम के नाम पर मनु अनुयायी इतना फटका क्यों मार रहे हैं।

दूसरी ओर एक लोक कथा और प्रचलित है कि इसी दिन मां दुर्गा ने महिषासुर की हत्या कर विजय प्राप्त की थी। यह दुर्गा और महिषासुर का युद्ध कब का है? कभी पता किये हैं क्या?

विश्व में कभी भी कोई घटना दुर्घटना होती है तो उसका पुरातात्विक साक्ष्य मिल जाता है। यहां तक कि डायनासोर और मानवजाति की उत्पति से लेकर आज तक के सभी साक्ष्य उपलब्ध हैं। लेकिन यह कैसी युद्ध विभीषिका से जुड़ी घटना है कि आज तक इसकी जानकारी या साक्ष्य नहीं

मिल रही है। भारत की सिंधु घाटी सभ्यता, मौर्यकालीन सभ्यता, गुप्तकालीन सभ्यता सभी का प्रमाण मिल जाता है, फिर यह दुर्गा और महिषासुरकालीन सभ्यता कब की है?

वैसे बता दूं कि 'महिषासुर' के दो अर्थ होते हैं।

प्रथम—महिषी का अर्थ रानी होता है, यानी महिषा का अर्थ राजा होगा।

दूसरा—महिषी का अर्थ भैंस होता है, महिषासुर यानी भैंस का मालिक। चरवाहा या पशुपालक।

भाई राजा या पशुपालक से किसी को क्या दुश्मनी हो सकती है। हां, दुश्मनी थी! और वह दुश्मनी थी अपनी काल्पनिकता भरी मनुवादी बातों को मनवाने की।

भारत में पहले दो ही मुख्य समाज थे। पहला (खत्तिय) खेती कार्य करने वाला समाज और दूसरा (महिषासुर) पशुपालक समाज।

काल्पनिक परम्परा को स्थापित करने के लिए इन्हीं दो समाजों के प्रतिष्ठित सम्राटों के युद्ध को दर्शाया जाता है। राजा बलि, राजा हिरण्यकश्यप, राजा महिषासुर इन्हीं वर्गों के पूर्वज थे। ये सभी लोग उस सम्यक समाज की व्यवस्था को छोड़ना नहीं चाहते थे, लेकिन आडंबर और पाखंड के पालनहार लोगों ने छलपूर्वक सभी को परास्त करते हुए अपनी आडंबरपूर्ण व्यवस्था स्थापित की और इन सभी को दैत्य, राक्षस, हरिद्रोही की उपाधि देकर आज एक लोक कथा के माध्यम से सभी के बीच में आज बांस का फटका बना दिए हैं। जिस पर लोग आज भी लकीर के फकीर बने हुए हैं।

वैसे मुख्य रुप से सम्राट अशोक ने इसी दिन कलिंग राज्य पर विजय प्राप्त कर मगध साम्राज्य में उसका विलय किया था। इसीलिए इस दिन को 'अशोक विजयादशमी' या 'विजयादशमी' कहते हैं।

10. करवाचौथ

यह पर्व भी हरतालिका तीज की भावना से ओत-प्रोत होते हुए आश्विन कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को मनाया जाता है। इसकी भी मान्यता है कि

करवाचौथ करने वाली महिलाएं सदा सुहागन बनी रहती हैं। लेकिन कभी उन महिलाओं से पूछ कर देखें जो बेचारी मध्यम उम्र में विधवा हो गयी हैं। क्या उनके किए गए करवाचौथ का पारितोषिक उनके सुहाग की रक्षा के रुप में नहीं मिलना चाहिए था? आखिर क्या वजह थी कि उनके सुहाग का साथ बीच में ही खत्म हो गया! अगर किसी के साथ कोई आश्वासन या पारितोषिक देने का वादा कर दे और समय आने पर वह अपने वादे से मुकर जाता है तो बात तू-तू मैं-मैं तक आ जाती है या फिर मार-पीट में बदल जाती है। लेकिन इस करवाचौथ के आश्वासन टूटने पर भोली-भाली महिलाएं उस मान्यता से बंधकर समाज के सामने सिर्फ रो-धोकर ही रह जाती हैं। अपने सुहाग को मिटाकर अंधकूप में चली जाती हैं, लेकिन इस कोरी परंपरा पर आज तक कोई भी बुद्धिजीवी महिला बोलने को सामने नहीं आई है। यानी की इसे भी उस अंधे का फटका समझकर लोग आज तक जमीन पर पीटते हुए लकीर का फकीर जैसा मानते आ रहे हैं।

11. धनतेरस

यह पर्व कार्तिक कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी को मनाया जाता है, जिसमें एक मान्यता चली आ रही है कि धन देने वाली देवी या देवता जो भी हों, वह स्वयं इस दिन प्रकट होते हैं और अपने सभी अनुयायियों को धन-धान्य से परिपूर्ण कर देते हैं। लेकिन लोग यह बात भूल जाते हैं कि इसी भारत में 1795 ईस्वी से पूर्व धन-धान्य या संम्पति रखने का अधिकार पिछड़े और अनुसूचित जाति को नहीं था। फिर ये धन-धान्य से परिपूर्ण किसको करते थे? क्या 1795 ईस्वी से पूर्व ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—जिनको धन रखने का अधिकार मात्र था—को ही अपने धन रखने का अधिकार देती थीं। फिर ये पिछड़ी और अनुसूचित जाति वाले लोग क्यों मेढक के जैसा अपने पैरों में नाल ठोकवाने पर तुले हुए हैं।

दूसरी मान्यता है कि इस दिन स्वर्ण धातु या द्रव्य खरीदना बहुत ही शुभ होता है। साक्षात धन के देवता कुबेर उस दिन खरीदार पर प्रसन्न हो जाते हैं।

अब आप स्वयं उस खरीदार और बिक्रीकर्ता के फटका को देखें!

खरीदना और बेचना दोनों एक दूसरे के विपरीत यानी विलोम शब्द हैं। इस लिहाज से भी अगर देखा जाये तो धनतेरस के दिन अगर वस्तुओं का खरीदना शुभ है तो बेचना अशुभ होगा। तब निश्चित ही खरीदारों की लंबी कतार बाजारों में लगनी चाहिए और लग भी रही है, शुभ और खुद के कल्याण हेतु ऐसा करना बुरा भी नहीं है। लेकिन यहां सवाल यह पैदा होता है कि बाजार में वस्तुएं बेचेगा कौन? क्योंकि खरीदना शुभ है तो बेचना निश्चित ही अशुभ होगा! और कोई व्यक्ति जान-बूझकर अपना अशुभ क्यों चाहेगा? तब तो समाज में इस परम्परा से अराजकता की स्थिति बननी चाहिए! आम जनता वस्तुएं खरीदने बाजार की ओर जाए और सभी व्यापारी अपनी प्रतिष्ठान को बंद कर भागे फिरें, क्योंकि दोनों को अपनी शुभ की चिंता है। परन्तु यहां पर जो हो रहा है वह बहुत ही अजीब हो रहा है, एक शुभ खरीद रहा है और दूसरा अपना शुभ बेच रहा है। अब शुभ बेचने वाले और शुभ खरीदने वाले का जो निष्कर्ष निकलता है, उससे साबित होता है कि शुभ बेचने वाला ज्यादा सुखी है वनिस्पत कि शुभ खरीदने वाले के।

शुभ-अशुभ के जंजाल में फंसे हुए लोगों, तुमको इस अंधविश्वास के माध्यम से धीरे-धीरे मीठा जहर देकर लूटा जा रहा है, तुम्हें बिना जरुरत कि वस्तुएं खरीदवाई जा रही हैं। तुम्हें शुभ का प्रलोभन देकर समुचित मूल्य से ज्यादा वसूल किया जाता है। धन कुबेर का नाम देकर इस दिन तुम्हें कबाड़ युक्त नकली सामान भी दिया जाता है। तुम्हारे नित्यदिन के बजट को बिगाड़ा जाता है, ताकि तुम कर्ज के दलदल में फंसो। जिसको तुम शुभ-अशुभ समझते हो वह धन से कंगाल बनाने वाला तुम्हारा काल ब्राह्मण-बनिया गठजोड़ है। यह धनतेरस नहीं, बल्कि यह शुद्ध रूप से व्यापारियों द्वारा ब्राह्मणों से मिलकर सभी बहुजनों का धन हड़प करने की साजिश भरी परम्परा का अविष्कार है। आप इस फटके से जितना जल्दी निकलेंगे उतनी जल्दी आपका मंगल होगा। कृपया आप लोग लकीर के फकीर न बनें।

12. दीपावली

दीपावली कार्तिक अमावस्या के दिन मनाया जाता है। इस दिन धूम-धाम से दीपों को जलाया जाता है। ऐसी मान्यता है कि इसी दिन राम जी अपनी

पत्नी सीता जी को लंका से लेकर अयोध्या वापस लौटे थे। परंतु फिर प्रश्न उठता है कि राम जी कब अयोध्या आये और कौन-सी अयोध्या आये? क्या उस समय अयोध्या नगरी थी? इसकी जानकारी कैसे प्राप्त हुई?

कारण यह है कि भारत का अधिकांश लिखित इतिहास मुस्लिम शासकों के आगमन से शुरू होता है। उसके पहले का इतिहास क्या था, कैसा था, सब जमीन के अंदर दबा है। जैसे-जैसे जमीन कि खुदाई होती है वैसे-वैसे पूर्व की सभ्यता और संस्कृति के साक्ष्य मिलते जाते हैं। आप इसके लिए अंग्रेजों को धन्यवाद दीजिये, जिन्होंने भारत का इतिहास राजपूत और मुगल काल से पूर्व पाल वंश से लेकर हर्यक वंश (छठी शताब्दी ईसा पूर्व) तक संपूर्ण भाषा, संस्कृति के साथ खोज निकला और उसके पूर्व की सभ्यता सिंधु घाटी की सभ्यता को भी सामने लाया, लेकिन अनाम व्यक्ति और भाषा के साथ। फिर ये राम वाली कहानी कब की है? अगर अंग्रेज भारत के शासक बनकर कुछ दिन और रुक जाते तो उस सिंधु सभ्यता की भी पूरी जानकारी प्राप्त कर देते। उस काम को आजादी के बाद भारत की ब्राह्मणी सरकार ने अपनी ब्राह्मणी व्यवस्था को नंगा होने के डर से रुकवा दिया। आज भी मैं दावे के साथ कहता हूं कि यदि भारत सरकार हर्यक वंश से पूर्व सिंधु घाटी की सभ्यता का पुनः उत्खनन कराये और उस सभ्यता की पुरातात्विक जांच कराये तो निश्चित ही ब्राह्मणों की थोपी सभ्यता साफ अलग हो जाएगी।

अब अयोध्या नगर पर आएं! कौन-सी अयोध्या नगरी की बात हो रही है! वर्तमान अयोध्या नगरी की तो बाबरी और राम मंदिर की लड़ाई में (SIT) 'भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण संस्था' की देख रेख में खुदाई हुई थी, जिसकी पूरी रिपोर्ट केंद्र सरकार और सुप्रीम कोर्ट के पास सुरक्षित है।

1862-63 में अंग्रेज A .E. Cunningham की रिपोर्ट को देख सकते हैं, लिंक दे रहा हूं।

http://www-thehindu-com/news/national/other&states The&ASI&Report&a&review/article16052925-ece

इसी दिन बंगाल के लोग काली पूजा करते हैं। इसकी परम्परा क्या है? इससे कितने शोषितों की जिंदगी से कालिमा हटी है, इस पर आज

भी बंगाल के लोग जवाब नहीं दे पाते हैं। दूसरी ओर पश्चिमी भारत और मध्य भारत में इसी दिन लक्ष्मी-गणेश पूजन का विधि-विधान होता है। इस लक्ष्मी पूजन पर पूर्व से मान्यता चली आ रही है कि जो भी लक्ष्मी पूजन करेगा वह धन्य-धान्य से परिपूर्ण हो जायेगा। लेकिन भारत जैसे देश में लक्ष्मी पूजन होने के बाद भी 20% लोग दो वक्त के भोजन से वंचित हैं और 30% लोग अपने दो वक्त के समुचित भोजन के लिए जूझते हैं। शेष में से बचे 30% लोग आज धूम-धाम से लक्ष्मी पूजन करने के बाद भी अपने परिवार को समुचित शिक्षा और स्वास्थ के लिए जूझते नजर आते हैं। भारत की यह सच्ची और कड़वी बिडंबना है।

भाई! फिर ये लक्ष्मी-गणेश की पूजा क्यों? ये तो धन्य कहिए उन अंग्रेजों का, जिन्होंने बहुसंख्यक भारतवासियों के ऊपर सम्पति (रुपया, धन, जमीन) रखने की सनातनी पाबंदी हटा दी। उसके पूर्व कभी भी लक्ष्मी जी नहीं बोलीं कि मैं सभी बहुसंख्यक के यहां भी धन के रूप में रहूंगी। आज अगर अंग्रेजों द्वारा धन रखने का अधिकार नहीं मिला होता और आजादी के बाद यह अधिकार बाबासाहेब के द्वारा निर्मित भारतीय संविधान में अनुमोदित नहीं होता तो आप लोग एक ओर लक्ष्मी-गणेश पूजा करते रहते और दूसरी ओर अंधे की लकड़ी वाला फटका मारते हुए लकीर के फकीर बने रहते।

दीपावली सही मायने में सम्यक सभ्यता का ईसा पूर्व 258 ईस्वी से चली आ रही रोशनी से परिपूर्ण त्यौहार है। इसकी प्रामाणिकता यह है कि जब सम्राट अशोक ने बौद्ध मार्ग को अपनाया था तब उन्होंने चौरासी हजार विहार, स्तूप और चैत्यों का निर्माण कराया था। उन सभी का निर्माण पूरा हो जाने पर कार्तिक अमावस्या को एक भव्य आयोजन द्वारा सभी स्तूपों, विहारों और चैत्यों में दीप-माला एवं पुष्प-माला द्वारा हर्षोल्लास के साथ शुभारंभ किया गया था, जिसे आज भी प्रत्येक घरों के आंगन के कोने में बने चौत (चैत्य आकर का निर्माण जिसे आज तुलसी चौरा भी कहते हैं) पर कार्तिक अमावस्या के दिन दीप प्रज्वलित करने की परम्परा है। कुछ लोग आज भी विहार या स्तूपनुमा घरौंदा का निर्माण कर उस पर दीप प्रज्वलित करते हैं। इस परम्परा को दीपदानोत्सव भी कहते हैं। लेकिन आज के लोग लकीर के फकीर बनते हुए इतनी अच्छी पूर्व परंपरा को अंधे का फटका बना दिए हैं।

13. छठ

यह पर्व कार्तिक षष्ठी को किया जाता है। मुख्यतः यह लोक परंपरा है। लेकिन इसकी चर्चा पुराणों और महाभारत पर्व में की गयी है, जिसका वर्णन अविवाहित कुंती और सूर्य के मिलन से होने वाले बच्चे के रूप में मिलता है। इस पर विस्तारपूर्वक चर्चा करना काफी असभ्य साबित होगा।

मूलतः प्रकृति की पूजा का कोई औचित्य ही नहीं बनता है। प्रकृति में शक्ति होती है, लेकिन प्रकृति की शक्ति के सामने याचना, प्रार्थना का कोई औचित्य नहीं होता है। याचना व्यक्ति से की जाती है, लेकिन प्रकृति की शक्ति से याचना करें तो भी उतना ही लाभ और याचना नहीं करें तो भी उतना ही लाभ मिलता है।

जैसे सूर्य की शक्ति है। वह शक्ति आपकी प्रार्थना की वजह से नहीं है, वह कुदरत की शक्ति है। आप प्रार्थना करो तो भी उससे लाभ मिलेगा और प्रार्थना नहीं करो तो भी सूर्य की शक्ति का लाभ मिलेगा। ऐसा न समझें कि सूर्य मेरी प्रार्थना से ही निकलता है। यह निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है।

उसी प्रकार से जल में धारा रूपी शक्ति है। आप उसका आदर करें, उसके मार्ग पर चलें, तो लाभ होगा। लेकिन यदि आप उस जल की धारा में खड़े होकर प्रार्थना करें कि हे जल देवता, मेरे प्राण बचा लो तो ऐसा नहीं होगा। जल की धारा वाली शक्ति आपके न तैरने की वजह से आपको बहा ले जाएगी यानी आपकी जान चली जाएगी।

उसी प्रकार से पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण की शक्ति है। यह भी आपकी प्रार्थना से नहीं है। यह शक्ति पृथ्वी की जन्मजात शक्ति है। पृथ्वी की इसी शक्ति से सभी लोग चल पाते हैं। लेकिन इस शक्ति के बताये अनुसार मार्ग पर नहीं चलेंगे यानी आदर नहीं करेंगे तो आप इसी गुरुत्वाकर्षण की शक्ति की वजह से गड्ढे में भी गिर जाएंगे। यह भी गुरुत्वाकर्षण की ही देन है। यानी सही रूप से प्रकृति की पूजा और प्रार्थना का कोई औचित्य नहीं, बल्कि प्रकृति के बताये मार्ग पर चलना ही धर्म है।

14. सरस्वती पूजा

माघ शुक्ल पक्ष की पंचमी को सरस्वती की पूजा की जाती है। लोगों में मान्यता है कि इसी दिन विद्या देने वाली देवी सरस्वती जी का जन्म हुआ था और वे लोगों को विद्या देती हैं। लेकिन आज तक यह बात कोई भी नहीं बता पाया है कि सरस्वती नाम कि महिला ने कब और किसको विद्या दी? आज जब भी सरस्वती की पूजा होती है तो उनके हाथों में एक पुस्तक होती है। क्या आप लोगों को मालूम है कि कागज का प्रचलन सर्वप्रथम चीन में द्वितीय-तृतीय शताब्दी में शुरू हुआ। संभवतः भारत में सातवीं सदी में कागज का प्रचलन आरंभ हुआ। ह्वेनसांग (671-694 ई.) ने भारत में कागज की चर्चा की है। परन्तु कागज का प्राचीनतम उल्लेख धार नगरी के राजा भोज (1018-1060 ई.) का है। तो निश्चित ही पुस्तक का निर्माण उसके बाद हुआ होगा। फिर सरस्वती जी के हाथ में पुस्तक होने का औचित्य नहीं बनता है या अगर बनता है तो वह पुस्तक जरूर ही 11वीं सदी के बाद की छपी पुस्तक होगी।

दूसरी बात, अगर सरस्ती ने सर्वप्रथम विद्या दी तो वह कौन सी लिपि-भाषा में दी थी? सर्वप्रथम ज्ञान प्राप्त करने वाले व्यक्ति का नाम क्या था? इन्होंने कौन-सी विद्यापीठ की स्थापना की थी? आज तक सिंधु लिपि को कोई जान क्यों नहीं पाया? भारत की प्राप्त लिपि पाली और प्राकृत को भी सरस्वती के अनुयायी क्यों नहीं पढ़ पाए? उस लिपि को भी अंत में अंग्रेजों ने ही पढ़ा था। भारत के हर विद्यालय में आज सरस्वती की तस्वीर मिलती है, लेकिन भारत के अंदर 850 ईस्वी से पूर्व के जितने भी शिक्षण संस्थान का आज पता चल रहा है और उनकी खुदाई हो रही है उनमें से कहीं से भी सरस्वती की मूर्ति क्यों नहीं मिलती है? आज से दो सौ वर्ष पूर्व तक सार्वजनिक तौर पर पिछड़े और अनुसूचित समाज के लोगों को शिक्षा प्राप्त करने पर पाबंदी थी या कहें तो ब्राह्मणों और राजपूतों को छोड़कर अन्य लोगों के पढ़ने पर पाबंदी थी तो विद्या की देवी ने उसके सुधार के लिए क्या प्रयास किए?

आज भारत में पढ़े-लिखे लोगों को भी ब्राह्मणों ने झांसा देते हुए, अंधे वाले बांस का फटका पकड़ा दिया है, ताकि बुद्धिजीवी लोग भी निरंतर लकीर का फकीर बनते हुए बांस का फटका जमीन पर पटकते रहें।

15. होली

इस होली की परम्परा में पहले दिन यानी फाल्गुन पूर्णिमा के दिन रात्रि को एक निर्बल महिला 'होलिका' के नाम पर सांकेतिक रूप से दहन क्यों किया जाता है?

क्या किसी भाई-बहन ने इस परम्परा की सच्चाई जानने की कोशिश की है?

उस होलिका नाम की महिला का दोष क्या था?

क्या वह व्यभिचारिणी थी?

क्या वह देशद्रोही महिला थी?

उस निर्दोष महिला को जलाने के बाद होलिका माई की जय क्यों बोलते हैं?

एक ही समय एक ही महिला पर दोहरा दृष्टिकोण क्यों? जब 'होलिका' की जय बोलते हो तो फिर स्वयं या पंडा द्वारा उसे जलाते क्यों हो?

उस प्रतीकात्मक होलिका के जले हुए राख को घर के पूजा स्थल या शरीर पर रोग निवारण हेतु लगाने की प्रथा क्यों?

अगली सुबह एक दूसरे को अबीर यानी अ + बीर अर्थात जो बीर (वीर) नहीं है, यानी कायरता का निशान लगाने की परम्परा क्यों?

इन सभी प्रश्नों पर आप लोगों ने कभी कुछ सोच-विचार किया है क्या? महिला आखिर महिला होती है, वह किसी की मां, किसी की बहन, किसी की बेटी होती है। अगर इन तीनों में से कोई रिश्ता होलिका का आपके साथ होता तब कैसा महसूस करते आप! किसी भी परम्परा को मानने से पूर्व उस समझदार बहू के जैसा तर्क करें। एक सच्चे निष्कर्ष पर पहुचें। ऐसा नहीं की किसी परंपरा को अंधे के पुत्र जैसा अपने पूर्वजों की पुरानी परंपरा समझ कर अंगीकार कर लें।

आइए इस होली की परंपरागत कहानी और तथ्य के नजदीक पहुंचने का प्रयास करते हैं। इस होली पर बहुत ही सुंदर-सुंदर कपोल-कल्पित दर्शन के ऊपर कहानियां प्रचलित हैं। परंतु किसी भी कहानी की कोई प्रामाणिकता

(पुरातात्त्विक साक्ष्य) नहीं है, लेकिन सभी में जो एकरूपता दिखती है उसके अनुसार होलिका और प्रह्लाद में बुआ और भतीजे का रिश्ता था। होलिका के भाई और प्रह्लाद के पिता का नाम हिरण्यकश्यप था, जो आज के उत्तर प्रदेश के हिरण्य नगर (आज का हरदोई) के राजा थे। वे बहुत ही बलशाली और सम्यक सोच वाले राजा थे। इस वजह से मनुपुत्र उनसे नाराज रहते थे। मनु के द्वारा स्थापित हरि यानी ईश्वर और आत्मा-परमात्मा को हिरण्यकश्यप नहीं मानता था इस वजह से मनु के पुत्र लोग नाराज रहते थे और हिरण्यनगर को हरि के द्रोही वालों का नगर भी बोलते थे। इसी वजह से बाद में ब्राह्मण लोग उस नगर को हरिद्रोही नगर के नाम से सम्बोधित करने लगे, जिसका प्रतिफल आज उस जगह का नाम हरदोई पड़ गया। हिरण्यकश्यप, ब्राह्मणी व्यवस्था बनने के बाद काल्पनिक भाग्य और भगवान को नहीं मानते हुए पूर्व की बौद्धिक सभ्यता और सम्यक सभ्यता के अनुयायी थे। इसी वजह से ब्राह्मणी मार्ग के अनुयायी इनके साम्राज्य को नष्ट करना चाहते थे। ब्राह्मणों ने हिरण्यकश्यप के पुत्र प्रह्लाद को सुरा-सुंदरी की आदतों के द्वारा अपने वश में कर लिया था। फिर भी हिरण्यकश्यप और उनकी बहन बहादुरी के साथ सम्यक व्यवस्था को सुचारु रूप से चला रहे थे।

ब्राह्मणों ने इन दोनों को धोखे से खत्म करके आज अलग-अलग दो काल्पनिक कहानियों का निर्माण कर प्रचलित किया। पहली कहानी एक नरसिंह अवतार की और दूसरी कहानी उस बहादुर महिला होलिका को अग्नि में जलने की। आगे एक काल्पनिक कहानी बनाकर लोगों के दिलो-दिमाग में बैठाया कि हिरण्यकश्यप एक दुष्ट राक्षस था जिसने घोर तपस्या करके ईश्वर से आशीर्वाद प्राप्त कर लिया था कि उसे कोई मनुष्य मार नहीं सकता है। इसीलिए उसके आतंक को खत्म करने के लिए स्वयं ईश्वर को नरसिंह के रूप में अवतार लेना पड़ा था। दूसरा, यह कि होलिका नामक महिला उस राक्षस का साथ देती थी और इसके पास भी ईश्वर से प्राप्त एक साड़ी थी जिसको पहनने पर वह महिला आग में नहीं जलती थी, लेकिन उसको भी खत्म करने हेतु स्वयं वायु देवता और अग्नि देवता को पृथ्वी पर आना पड़ा।

काल्पनिक कहानी, कहानी होती है, जो पानी के बुलबुले जैसी होती है, उस पर थोड़ी देर ध्यान देंगे तो वह स्वतः फूटने लगेगा।

यह नरसिंह अवतार क्या है?

यह धूर्त ब्राह्मणों द्वारा जानवर का मुखौटा लगाकर हत्या करने की एक घटना मात्र है। क्योंकि हिरण्यकश्यप के किला का पुरातात्त्विक साक्ष्य आज भी बुंदेलखंड के झांसी में एरच कस्बा में मौजूद है। उस खंडहर की अनुमानित आयु आज से 700 से 800 वर्ष पूर्व की आंकी जाती है। उस समय क्या ईश्वर का अवतार होता था? अगर होता था तो स्वयं ईश्वर के मंदिर सोमनाथ को महमूद गजनी ने क्यों लूटा था? यह सिर्फ ब्राह्मणों द्वारा पूर्व की बौद्धिक सभ्यता को नष्ट करते हुए भाग्य और भगवान से जुड़ी सभ्यता की पदार्पण की कड़ी मात्र है जिसके लिए ब्राह्मणों ने जानवर का भेष धारण कर हिरण्यकश्यप की हत्या की थी, जिसे बाद में नरसिंह अवतार की चर्चा से जोड़कर एक परंपरा बनाया गया, जिसका प्रमाण कहीं कुछ नहीं है।

ये वायु देवता और अग्नि देवता क्या हैं?

उस बहादुर महिला होलिका को धोखे से खंभे में बांधकर व्यभिचार करते हुए अग्नि के हवाले कर दिया और नाम दिया कि होलिका ने ईश्वर के वरदान स्वरूप जो साड़ी पहनी थी वह हवा में उड़कर प्रह्लाद के ऊपर चली गयी जिसके वजह से प्रह्लाद बच गया और होलिका जल गयी।

अब इस ब्राह्मणी कहानी में ध्यान देने की बात यह है कि जब हिरण्यकश्यप और होलिका ईश्वर को मानते ही नहीं थे तो फिर उस ईश्वर से हिरण्यकश्यप को अमरत्व का और होलिका को अग्निरोधी (फायर प्रूफ) महिला का आशीर्वाद कैसे मिला? उस होलिका के पास ईश्वर द्वारा प्रदत्त साड़ी कैसे आयी? यह बिलकुल ही ब्राह्मणों की काल्पनिक कहानी दोरंगी नीति पर बनी है, जिसमें एक ओर ब्राह्मण कहता है कि वह दोनों ईश्वर विरोधी भाई-बहन थे और दूसरी तरफ कहता है कि उस दोनों भाई-बहन को ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त था, इस वजह से कोई उन्हें मार नहीं सकता था, इसलिए ईश्वर ने स्वयं नरसिंह का अवतार लेकर हिरण्यकश्यप की हत्या की और दूसरी, वायु देवता और अग्नि देवता दोनों ने मिलकर होलिका की

साड़ी को हवा में उड़ाते हुए उस साड़ी को प्रह्लाद पर रख दिया फिर अग्नि ने होलिका को जलाकर मार दिया और प्रह्लाद को बचा लिया। क्या ऐसा हो सकता है? वाह भाई! क्या बांस का फटका बनाया है! हमें तो अब नहीं लगता है कि इस तथ्य को जान जाने के बाद इस प्रकार की झूठी ब्राह्मणी कहानी पर कोई अपना बांस का फटका पीटेगा!

होलिका और होली वस्तुतः सम्यक काल की एक स्वच्छ परम्परा को रूपांतरित करते हुए विकृत नाम और रूप है।

इस होली का कोई भी साक्ष्य 850 ई. से पूर्व के काल में उत्खनन से प्राप्त नहीं हुआ है।

भारत के अंदर सम्यक सभ्यता में बौद्ध-पंचांग, शक्-पंचांग, विक्रम-पंचांग का प्रचलन था। तीनों पंचांग के अनुसार वर्ष का अंतिम दिन और वर्ष का प्रथम प्रारंभ दिन को खुशीपूर्वक उस समय में उपलब्ध फसल के बने पकवानों के साथ बिताने से था। उस समय किसानों द्वारा उत्पादित रबी फसल की पैदावार अमूनन हर घरों में आ जाती थी। इस वजह से वर्ष के अंतिम दिन को नमकीन बनाते हुए हरा चना का भभरा, हरी सब्जी का पकौड़ा, गुजिआ जैसे अनेक प्रकार के चटपटे व्यंजनों द्वारा पुराने वर्ष को विदाई करते हुए खुशी मनाने की परंपरा थी। पुनः प्रातःकाल नए वर्ष के प्रथम दिन को मिष्ठान भोजन जैसे पूआ-पकवान को ग्रहण करते हुए नए वर्ष को मीठी-मीठी खुशबू के साथ स्वागत करने की परंपरा थी। लेकिन धुर्त ब्राह्मणों ने हजार ईस्वी के बाद से अपनी काल्पनिक सत्ता को स्थापित करने में रुकावट पैदा करने वाले हरिदोई उत्तर प्रदेश के खत्तीय (खेती करने वाला) राजा 'हिरण्यकश्यप' के साथ छलपूर्वक व्यवहार करते हुए उनका एवं उनकी बहन 'होलिका' की हत्या करते हुए पुराने वर्ष के विदाई और नए वर्ष के स्वागत में एक नयी कहानी को ही स्थापित कर दिया है। आज इस परंपरा को लोग अबीर (गुलाल) के नाम से भी जानतें हैं। परंतु आप सभी को बता दूं कि अबीर (गुलाल) जैसे शब्दों का प्रचलन भारत में मुगल के आने के बाद हुआ है, क्योंकि यह अबीर (गुलाल) शब्द फारसी का है।

"वस्तुतः यह पुराने वर्ष की विदाई और नए वर्ष को स्वागत करने का दिन है।

आज जरूरत है तो सिर्फ आने वाली पीढ़ी को इन सभी बातों से अवगत कराने की कि यह होली की बधाई न होकर पुराने वर्ष की विदाई और नए वर्ष के स्वागत का दिन है। साथ ही कृषि प्रधान देश में रबी फसल के घर आगमन का हर्षोल्लास का दिन है।

लेकिन इन दोनों दिन के उल्लास में साजिश के तहत ब्राह्मणों ने सम्यक सम्राट हिरण्यकश्यप की हत्या करते हुए उस पुरानी परंपरा में एक नई विकृति भरते हुए होलिका दहन और उस होलिका दहन को कायरों की भांति देखने के लिए कायरों का निशान अ+बीर = अबीर लगाकर सबो को मूर्ख बनाया।

आज भी इस विकृति को हिरण्यकश्यप के वंशज या अनुयायी जो छत्तीसगढ़ में हैं, जो अपने नाम के पीछे 'कश्यप' उपाधि लगाते हैं, वे लोग अपने आप को हिरण्यकश्यप का वंशज मानते हैं और वे लोग अपनी भाषा में जिसे 'कुरमाली' भाषा कहते हैं, उसमें एक लोकगीत इस प्रकार गाते हैं–

बितल हाजार बछर आगुक काथा हेकेइक पसचिम दिसा कर राजा हामर कुड़मि राजाञ राज करेहेला।

अखरा दुइ भाइ आर एक बहिन रहला
बड़अ भाइ एक नाम मा. हिरना काछुआर,
आर छटअ भाइ एक नाम मा. हिरनु काछुआर
आर एक बहिन जाकर नाम होलिका काछुआर

सेइ समञे पुरुब देसेक राजा घोरासुर काडुआर रहे हेलेइन तअ काथा हेलेइक बामहन निखा पसचिम दिसा लें आइ रहत आर हिरनु काछुआरेक राजें भेंड़ि चराइ के रहेइतेला तअ बामहन निखाक मांझें बिसनु नामेक एक टा चतुर चालाक बामहन रहे हेलेइन ओहे बिसनुञ छल करि पहिलें हिरनु काछुआर के मारलेइ।

तखन हिरनुक छटअ भाइञे राज पाटेक दाइभार लेलाक मेनतुक बामहन निखाक ताउ सानति निहि सरइक तखन फांदि करि हिरना काछुआर कर बेटा पहलु काछुआर के मद खाउआके मातल बेनाउलेथिन आर आर आपन बापेक संगे मतभेद कराइ देलथिन तखन राजाञ पहलु के देस लें बाहिर करेक

आदेस देला इसब काथा सुनि पहलु कर फुफु होलिका कर बेड़ि दुखअ भेलि एकटा आदरेक भतिजा आर बनबास तेंञ होलिका कर मने पहलु के देखेक तेंहे पुरनिमाक इंजर रातिञ खाइएक लेइ पहलु कर पास गेलि उहां देखे पाउलि जे भतिजा कर लागि मञ आइलं सेहो तअ मर्दे माति आहेइक आर संगि सब बामहन निखा तखन बेचारि घुरि घार आउए लागलि तखन एका रातिञ पाइके होलिका के देह के सामुहिक दुसकरम करि आइग लागाइ मराइ देलथिन।

इ काथा जखन हिरनु कर काने आइलेइ तखन सभे बामहन निखा के खोजि कुहुन अखराक माथाञ छुराञ अबिर लेखि देलेइन तखन लेइ अबिर कर परचलन बामहन निखा राइ निजेक बदमाइसि टा लुकाउएक तेंहे अबिर सुरु हेलेइक आर जेतना बामहनेक माथाञ अबिर लेखल रहेहेलेइ ताखरा के गाधाञ चापाइ गांडे गांडे घुराइ तखन जेञ जा पारला केउ कादा फेंकि केउ धुरा फेंकि बामहन निखा के साजा देलेइन ताकर बादें अखरा केउ मारि मराइ देलेइन राजाञ सेइ अपमान के ढाकाउएक तेंहें अखरा होलि परब कर सिरजन करला मेनतुक हामर कुड़मि निखा इ काथा टा कबउ माथाञ निहि ढुकलेइ जे हामरा निजेक पुरखा कर फुफुक सहिद दिने हामरा माताइ के माइ बहिन के जेसें चिनहे निहि पारलं धिक धिक कुड़मि घारें हामर जनम रे।

सौजन्य—मा. सारिआन काड़ुआर, सारिअन समाज (छत्तीसगढ़)

हिंदी रूपरांतरण—हजार वर्षों से भी पुरानी घटना है, पश्चिम दिशा में हमारे कुडमी (कुर्मी) राजा राज करते थे। वे दो भाई और एक बहन थे। बड़े भाई का नाम मान्यवर हिरना कछुआर तथा छोटे भाई का नाम हिरनु कछुआर एवं बहन का नाम होलिका कछुआर था। ठीक इसके सामने पूरब दिशा में घोरासुर कड़ुआर का राज था। इन्हीं के काल में ब्राह्मणों का कहीं से आगमन हुआ था। जो हिरनु कछुआर के राज्य में भेड़ चराते थे। उसी में से एक चतुर चालाक विष्णु नाम का ब्राह्मण भी था। वही छल बल से पहले हिरना कछुआर को धोखे से मार दिया। तब उसका छोटा भाई हिरनु राज-पाट संभाला। जब विष्णु की दाल नहीं गली तब जैसे-तैसे हिरनु कछुआर का बेटा पहलु कछुआर को नशेड़ी बनाया और बाप-बेटे में मतभेद करवा दिया। राजा द्वारा पहलू (प्रह्लाद) कछुआर को देश निकाला दे दिया गया। यह सुन कर पहलु की फुआ को बहुत दुःख हुआ। एकलौते बेटे के वनवास

से होलिका के मन में पहलु को देखने की इच्छा पैदा हुई, तब वह पूर्णिमा के उजियारी रात को खाद्य पदार्थ ले के पहलु के पास गई। लेकिन वहां तो नजारा ही कुछ और था।

शराब के नशे में धुत ब्राह्मणों के साथ पहलु कछुआर को देख फुआ होलिका बड़े दुःख के साथ वापस लौट रही थी, तभी उसके ब्राह्मण साथियों ने होलिका को अकेले पाकर सामूहिक दुष्कर्म कर उसे जला दिया। यह बात जब हिरनु कछुआर के कान तक आयी तब उसने सभी ब्राह्मणों का मुंह पोत कर माथा में छुरा से अबीर लिख दिया गया और गधे पर बिठाकर नगर में घुमाया। जिसको जो मिला कादो, कीचड़, धूल से मुंह पोतकर उन्हें सजा दिए। बदमाश को बदमाशी की सजा के तौर पर मार दिया गया।

इसके बाद धोखे से ब्राह्मणों ने राजा हिरनु को मार कर अपना राज कायम किया। इसी दिन से होली पर्व का सृजन ब्राह्मणों ने अपने अपमान को छिपाने के लिए किया। मतलब हमारे कुड़मियों के माथा में कभी भी नहीं घुसा की निज पुरखों की फुआ जलायी गई थी।

॥ धिक् धिक् रे कुंड़मी घर में हमारा जन्म ॥

आप लोग समझ गए होंगे कि इस कहानी में आंख से अंधे पात्र हेतु और ब्राह्मणों के मानसिक अधीन लोगों हेतु परंपरा और फटका कैसे बनाया जाता है।

आप सभी ने इस पुस्तक को ध्यान से पढ़ा, इसके लिए आप सभी का बहुत-बहुत आभार। लेकिन आप इस काल्पनिक आडंबरपूर्ण फटका को समझते हुए इस विकृति को जितना जल्दी खत्म करने का काम करेंगे उतना ज्यादा आपकी आने वाली पीढ़ी खुशहाल होगी। आप लोग बुद्धिजीवी हैं इसलिए आप लोग अतार्किक परंपरा पर 'लकीर का फकीर' नहीं बनते हुए अपनी आने वाली पीढ़ी को तर्कसंगत मार्ग और परंपरा का निर्माण करें।

॥ अतैव आपके उस प्रयास को सफल बनाने के लिए बहुत मंगलकामना ॥

॥ अत्त दीपो भव ॥

सम्यक प्रकाशन द्वारा प्रकाशित
बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आंबेडकर की रचनाएं

भगवान बुद्ध और उनका धम्म (डीलक्स)	3,800
भगवान बुद्ध और उनका धम्म	200
भारत का संविधान (गोल्डन संविधान)	400
भारत का संविधान (Diglot Edition)	600
भारत का संविधान (Pocket Edition)	130
पाकिस्तान अथवा भारत विभाजन	350
हिंदू धर्म की रिडल	250
कांग्रेस व गांधी ने अछूतों के लिए क्या किया?	250
प्राचीन भारत में क्रांति और प्रतिक्रांति	350
शूद्रों की खोज	200
बौद्ध धर्म और साम्यवाद	100
अछूत कौन और कैसे?	100
हिन्दुइज़्म का दर्शन	200
गांधी और विमुक्ति अछूतों की	70
राज्य और अल्पसंख्यक	70
जातिभेद का बीजनाश	80
संघ बनाम स्वतंत्रता	60
गांधी व गांधीवाद	40
बौद्ध धर्म ही मानव धर्म	40
भगवान बुद्ध ने क्या शिक्षा दी	60
डॉ. आंबेडकर की साक्षी—साऊथबरो कमेटी के समक्ष	40
सम्मान के लिए धर्म परिवर्तन करें	50
धम्म, अधम्म तथा सद्धम्म में क्या अंतर है?	40
बुद्ध और कार्ल मार्क्स	80
बीसा की प्रतीक्षा में	40
धम्मचक्कप्पवत्तन सुत्त	40
हिन्दू नारी का उत्थान और पतन	75
रानडे, गांधी और जिन्ना	40

काठमांडू का भाषण	40
ईश्वर, आत्मा, वेदादि में विश्वास अधर्म है	40
हम बौद्ध क्यों बने?	20
द रिडल्स ऑफ रामा एण्ड कृष्णा	30
भारत में जातियां	40
साम्प्रदायिक गुत्थी हल करने का मार्ग	40
अछूतपन का मूल	20
बुद्ध और उनके धम्म का भविष्य	30
नागपुर का धम्मोपदेश	15
डॉ. आंबेडकर के प्रेरक भाषण (भाग-1)	175
डॉ. आंबेडकर के पत्र	150
प्रतिक्रांति के कुछ पहलू	50
भारत में छोटी जोतें समस्याएं और समाधान	40
भाषाई राज्यों पर विचार	80
बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर के ऐतिहासिक व्याख्यान, (भाग-1)	200
बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर के ऐतिहासिक व्याख्यान, (भाग-2)	300
'बहिष्कृत भारत' में प्रकाशित बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर के सम्पादकीय	200
मूकनायक	150
जनता	300
ब्राह्मणवाद की विजय	100
रूपये की समस्या	300
डॉ. बी.आर. आंबेडकर द्वारा राज्यसभा में दिए गए भाषण	150
बाबासाहेब डॉ. आंबेडकर और साइमन कमीशन	225
मुक्ति किस मार्ग से?	40

सम्यक प्रकाशन : एक परिचय

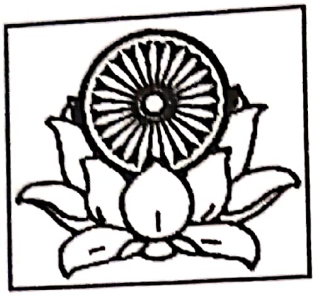

सम्यक प्रकाशन भगवान बुद्ध और उनके द्वारा स्थापित बौद्ध धम्म, बोधिसत्व बाबासाहेब डॉ. बी.आर. आंबेडकर, महान सम्राट अशोक, जोतिबा फुले, छत्रपति शाहूजी तथा देश के अन्य सामाजिक क्रांतिकारियों, समाज सुधारकों व उन महान विभूतियों से सम्बंधित साहित्य के प्रकाशन एवं उनके मिशन के व्यापक प्रचार-प्रसार हेतु समर्पित है। यह प्रकाशन सस्ते और रियायती मूल्य पर मूल्यवान, दुर्लभ एवं सचित्र साहित्य उपलब्ध कराता है। अब तक सम्यक प्रकाशन द्वारा 14 भाषाओं में लगभग 2,000 छोटी-बड़ी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं। समाज के प्रमुख क्रांतिकारियों, समाज-सुधारकों, प्रमुख वीर-वीरांगनाओं के जीवन के विभिन्न पहलुओं को दृष्टिगत रखते हुए सरल भाषा में सचित्र पुस्तकें तैयार करने में इस प्रकाशन का कोई सानी नहीं है। इसकी स्थापना विश्व प्रसिद्ध चित्रकार **बौद्धाचार्य शांति स्वरूप बौद्ध** ने की है, जो सरकारी राजपत्रित पद को ठुकरा कर सांस्कृतिक, कलात्मक, साहित्यिक, सामाजिक क्रांति को सफल बनाने के लिए अपने समस्त साधनों सहित पूर्णतः समर्पित हैं।

सम्यक प्रकाशन का संपादक मंडल प्रतिष्ठित एवं जनप्रिय विद्वानों से युक्त है, जो उचित जांच-परख और समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर पुस्तकों का प्रकाशन हेतु चयन करता है। सम्यक प्रकाशन की विगत वर्षों में बौद्ध तथा आंबेडकरी साहित्य के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के प्रकाशन में प्रमुख भूमिका उल्लेखनीय है व भविष्य में भी अपने लक्ष्य के प्रति पूरी तरह सजग रहेगा। नारी कल्याण व समाज को अंधविश्वास, ढोंग और पाखंड के चंगुल से निकालने के लिए बुद्धिवादी एवं तर्कशील साहित्य के प्रकाशन के लिए सम्यक प्रकाशन पूर्णतः कटिबद्ध है।

भारतवर्ष का मूलनिवासी समाज आज अपनी अस्मिता की पहचान के लिए जूझ रहा है। हमारी अलग पहचान तभी बन सकती है जब हम अन्य पहलुओं के साथ अपनी संस्कृति के अनुकूल भाषा एवं शब्दों का प्रयोग करें। हर्ष क विषय है कि सम्यक प्रकाशन भाषा एवं शब्दों के माध्यम से मूलनिवासी अस्मिता की स्थापना में भी अग्रणीय भूमिका निभा रहा है।

सम्यक प्रकाशन बौद्ध संस्कृति एवं मूलनिवासी क्रांतिवीरों से सम्बद्ध सहित्य को गौरवशाली ढंग से प्रकाशित करने के लिए प्रयासरत है। वास्तव में इस प्रकाशन द्वारा प्रकाशित साहित्य इस देश के शोषित, प्रताड़ित, वंचित एवं महिला समाज के लिए एक वैकल्पिक मीडिया की भूमिका निभा रहा है। हर्ष का विषय यह है कि सम्यक प्रकाशन द्वारा प्रकाशित अनेक ग्रंथ एवं ग्रंथकार राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों द्वारा पुरस्कृत किए जा चुके हैं। यह तथ्य भी महत्त्वपूर्ण है कि सम्यक प्रकाशन को दिल्ली बुक फेयर, प्रगति मैदान में 2 बार सम्मानित किया जा चुका है।

बेरोजगार युवकों को साहित्य की बिक्री के माध्यम से रोजगार उपलब्ध कराना भी सम्यक प्रकाशन का परम ध्येय है। सम्यक प्रकाशन ने विगत कई वर्षों से समाज के प्रतिष्ठित विद्वान लेखकों एवं समाजसेवियों के उत्साहवर्धन हेतु 'सम्यक साहित्यरत्न सम्मान' से विभूषित करने की योजना बनाई है। इसलिए अब यह संस्थान मात्र पुस्तक प्रकाशन तक ही सीमित न रहकर समूचे आंबेडकरी-बौद्ध आंदोलन का संवाहक बन चुका है। इस ऐतिहासिक कार्य में आप सभी का सकारात्मक सहयोग अपेक्षित है।

सम्यक प्रकाशन द्वारा प्रकाशित
लेखकद्वय की अन्य रचनाएं

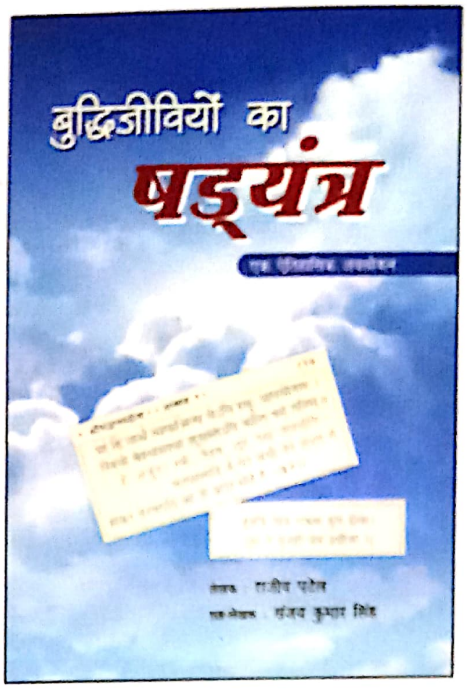

₹125

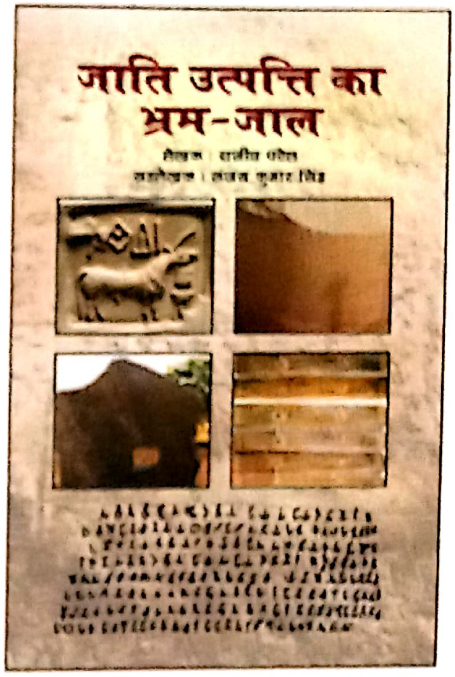

₹40

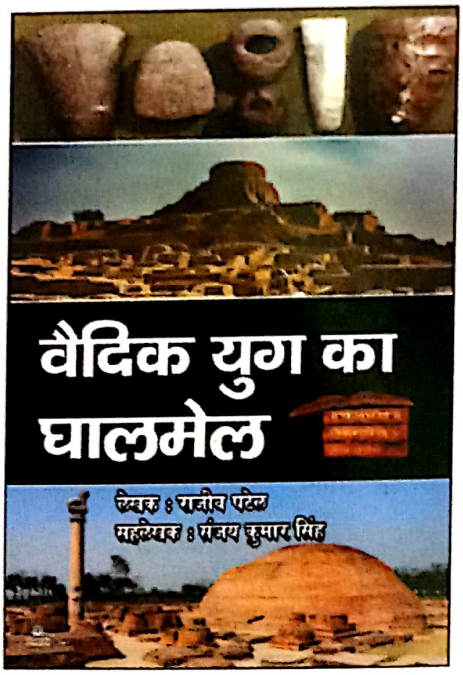

₹250

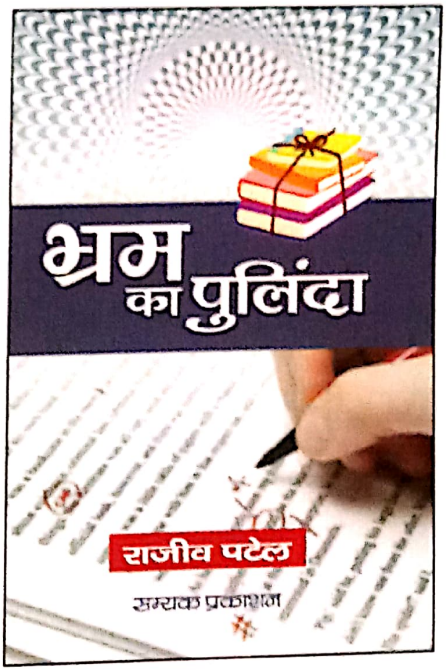

₹250

सम्यक प्रकाशन

32/3, पश्चिम पुरी, नई दिल्ली–110063

मो. : 9810249452, 9818390161

Email : hellosamyak1965@gmail.com Web : www.samyakprakashan.in

ISBN : 978-81-949470-3-5

₹ 40